Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

पुराणों में कृषि व्यवस्था

डॉ. अभिषेक दत्त त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
का0 सु0 साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय अयोध्या, उत्तर प्रदेश।

शोध-सारांश- मानव ही नही, वरन् समस्त प्राणियों के लिए भोजन अति आवश्यक है बल्कि अनिवार्य है। बिना भोजन के मनुष्य के शरीर का विकास असंभव है। मानव अपनी आवश्यकता अनुसार खाद्य पूर्ति के लिए प्रयत्न करता है। वह पृथ्वी पर अन्न, फल आदि की उत्पत्ति करता है जो कृषि कर्म कहलाता है। विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, वामन पुराण, गरुड़ पुराण, नारद पुराण, इत्यादि पुराणों में कृषि के कर्म को करने के विविध तरीके और उन पर विस्तार से चर्चा की गई है। कृषि विद्या की कुशलता से उत्तम, अत्यधिक एवं ऐच्छिक अन्न की उत्पत्ति की जा सकती है। यजुर्वेद में भी कृषि करने का महान स्थान भूमि ही बताई गई है। - **भूमिरावपनं महत्**

प्रत्येक मनुष्य को भोजन मिले, खाद्य पदार्थों की समस्या न हो इसके लिए कृषि करने की आवश्यकता है। यजुर्वेद या कहता है की भूमि को कृषि योग्य बनाना चाहिए। इस प्रकार पुराणों और वेदों के अनुसार हम सब को पृथ्वी पर उत्तम अन्नों की कृषि करना और कराना चाहिए।

मुख्य शब्द– पुराण, कृषि, मनुष्य, खाद्य, भारत, उद्योग, अर्थव्यवस्था, यजुर्वेद।

प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। विश्व में कृषि के कारण ही भारत की अर्थव्यवस्था की स्थिति सुदृढ बनी हुई है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का लगभग 14% योगदान है। किंतु भारत के 60% लोगों के जीवन निर्वाह का आधार कृषि ही है। उद्योग के रूप में कृषि आरंभ से ही एक विशिष्ट विद्या के रूप में स्वीकार की गई है जिसका उल्लेख विष्णु पुराण में मिलता है।[1] पुराणों के अनुसार आरंभ में कृषि का कोई क्रम नहीं था मार्कंडेय पुराण के अनुसार प्राचीन काल में मनुष्य को कृषि का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था। पुराणों में कृषि को 'प्रभृत' नामक जीविका के अंतर्गत रखा गया है, जो जीवन निर्वाह के लिए निहित पांच प्रकार की वृत्तियों में से एक है पांच प्रकार की वृत्तियां इस प्रकार हैं–

1. ऋत (खेत फटने के उपरांत चुने हुए अनाज से जीविका निर्वाह)
2. अमृत (जो बिना कुछ मांगे मिल जाए)
3. मृत (मांगी हुई भीख)
4. प्रभृत (खेती करना)
5. सत्यानृत (व्यापार करना) [2]

कृषि के जन्मदाता के रूप में पृथु का उल्लेख पुराणों में मिलता है। विभिन्न तथ्यों से ज्ञात होता है कि राजा वेन के समय में पृथ्वी समतल नहीं थी। कहीं पर्वत, कहीं कंदरायें, कहीं पठार, भूमि पूरी तरह से ऊंची और नीची थी। इसी कारण पुर और ग्राम का कोई निश्चित विभाजन भी नहीं था।

हि पर्व विसर्गे वै विषमे पृथिवी तले।

प्रविभागः पुराणं वा ग्रामाणां वा पुराभवत।।[3]

जब लोगों का जीवन स्थिर निवास वाला हुआ और उन्हें जीविका की कठिनाई हुई तब पृथु ने पृथ्वी को कृषि योग्य समतल बनाया। जहां पृथ्वी समतल थी, वहां प्रजा ने रहना शुरू कर दिया उसके उपरांत पृथु की प्रेरणा से कृत्रिम कृषि का आरंभ हुआ।

वैन्या प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यै तस्य संभवः।[4]

इसके पहले तक पृथ्वी बिना जोते बहुत ही धान्य पकाने वाली थी

'अकृष्ट पच्या पृथिवी सिध्यन्तयन्नानि चिन्तया।पुटके पुटके मधु। [5]

कृषि के उपकरण के रूप में सीर, हल तथा लांगल शब्द प्राप्त होते हैं। विष्णु पुराण में लांगल शब्द का उल्लेख शेषनाग के प्रसंग में तथा अन्यत्र हलधर(बलराम) द्वारा लांगल उठाए जाने के प्रसंग में आया है।

"नाजगाय ततः कृद्धो हलं जग्राह लांगली"

विष्णु पुराण के अनुसार ह्रस्वरोमा के पुत्र सीरध्वज नामक राजा द्वारा सीर से यज्ञ भूमि जोतने का उल्लेख है।

"तस्य पुत्रार्थे जनभुव कृषतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्ना" [6]

भूकर्षण (खेत जोतना) के लिए हल प्रायः बैलो द्वारा खींचे जाते थे। जिनके लिए 8,6,4 और दो बैलो की आवश्यकता होती थी।

" हलमष्ट गवं धर्म्ये षड्गवं जीवितार्थिनाम्।

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगलधर्मधातिनाम्।।" [7]

कहीं-कहीं पुराणों में 'फाल' शब्द का प्रयोग भी मिलता है-

"अफालकृष्टा ओषध्यो ग्राम्यारण्यास्तु सर्वशः।

वृक्ष गुल्मलतावल्ली वीरुधस्तृण जायतः।।[8]

इसके अतिरिक्त अन्य उपरणों के रूप में यत्र तत्र कुदाल, खनित्र, दात्र एवं परसु के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

"कुद्दाल रज्जवेप्रणां पीठकानां तथैव च।

तुषाणां चैव दात्राणामग्ग राजां च संचयः।।[9]

वैदिक काल में 12 एवं 24 बैलों के द्वारा हल के खींचे जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। प्राय: 8 बैलों से खींचा जाने वाला हल अत्यधिक उपयुक्त माना गया है। पुराणों में कृषि योग्य भूमि के लिए 'क्षेत्र' तथा फसल के लिए 'सस्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। साथ ही भूमि का दो प्रकार से विभाजन भी किया गया है। कृषि योग्य भूमि और ऊसर भूमि

"यावत्सस्यं विनष्टं तु तावत्क्षेत्री फलं लभते" [10]

ऊसर भूमि में उत्पन्न अन्न को त्याज्य माना गया है

"गान्धारककरम्बादिलवणान्यैषरणि च।

वज़्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते।।"[11]

पुराणों में अन्न के लिए औषधि शब्द का प्रयोग किया गया है। पृथु द्वारा पृथ्वी को समतल बनाए जाने पर दो प्रकार के अन्नों की उत्पत्ति हुई, जिन्हें ग्राम्य एवं वन (अरण्य) कहा गया। जिन की उत्पत्ति ग्रामों में होती है, उन्हें ग्राम्य अन्न जैसे ब्रहि (धान), गोधूम (गेंहू), तिल, प्रियंगु, मुद्रग (मूंग), आढ़म्य (अरहर), चणक (चना), अणु (छोटा धान), आदि। वन्य औषधियाँ (अनाज) का प्रयोग केवल यज्ञों में होता था। यथा- ब्रीहि, यव, माष, गोधूम, अणु, तिल, प्रियंगु, कुलस्य, श्यामक, नीवार, गवेधु, वीनुयक, मर्कट (मक्का)। ग्राम्य तथा वन्य अन्नो के दो अन्य नाम कृष्टपच्य एंव अकृष्टपच्य भी मिलते हैं।

"कृष्टानामोषधीनां च जातानां च स्वयंवने"[12]

पुराणों के अनुसार प्राचीन काल में देश के कुछ प्रदेशों में 12-12वर्षों तक वर्षा नहीं होती थी और कभी-कभी अतिवृष्टि का सामना भी करना पड़ता था, जिससे समस्त औषधियां नष्ट हो जाती थी।

"तस्य च शन्तनो राष्ट्रे द्वादशं वर्षाणि देवो नववर्ष" [13]

"अनावृष्ट्या राजयान्भूषिकाधैरूप द्रवै:" [14]

कृषि के संदर्भ में अनेक संकटों का होना जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, प्रेतबाधा, राजभय, पशुउपद्रव, इत्यादि प्रमुख थे। वर्षा न होने से दुर्भिक्ष का भय तथा अधिक वर्षा होने से बाढ़ का प्रकोप था जिससे कृषि का नाश हो जाता था साथ ही समाज में लोग उपद्रव होने का भय भी उत्पन्न हो जाता था।

सिंचाई के उपायों के आधार पर भूमि का वर्गीकरण दो रूपों में किया जाता था-

(क) देवमातृका

(ख) अदैवमातृका [15]

देवमातृका में फसल की सिंचाई स्वयमेव वर्षा के जल से होती थी, जबकि अदैवमातृका के अंतर्गत कृषक अपनी फसल की सिंचाई के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करता था। वर्षा के अतिरिक्त जिन कृत्रिम साधनों का सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता था, उनमें धुँआं, सरोवर, नहरें और तालाब आदि महत्वपूर्ण थे। सिंचाई के लिए घटी यंत्र का भी उल्लेख पुराणों में मिलता है। जिसमें पानी एकत्र करने के लिए बर्तन लगे होते थे, जिन से क्रमश: ऊपर नीचे आते जाते सिंचाई होती थी।

"संसार चक्रोऽस्मिन्भ्राम्यते घटियन्त्रवत्" [16]

नारद पुराण के अनुसार जो व्यक्ति सिंचाई के साधनों को उपलब्ध कराता था और इन साधनों की रक्षा करता था, वह श्रेष्ठ था–

"कासार कूप कर्तारस्ते वै भागवतोत्नमा:।" [17]

पुराणों में बीज की गुणवत्ता से संबंधित मत भी प्राप्त होते हैं। कृषक उच्च कोटि के बीज चुनकर समय-समय पर उनका उपयोग करके कई गुना फसल उत्पन्न कर लेते थे मत्स्य पुराण के अनुसार जो बीच होने लायक नहीं है उन्हें बेचना या अच्छा बता कर किसी को देना अपराध समझा जाता था, और वह व्यक्ति दंड का पात्र होता था।

"मूलकम्माभिचारेषु कर्तव्यो हिराती दम: अबीजविक्रयी यश्च बीजोत्कर्षक एव च" [18]

पुराणों में बीज बोने के लिए शुभ मुहूर्तों का उल्लेख भी किया गया है। अच्छे मुहूर्त में चंद्र का पूजन करके ही बीज बोना चाहिए, अन्यथा फसल नष्ट होने की संभावना बनी रहती है।

"अग्गयदिनारम्मेत्वतृप्तो वपते च य:" [19]

अच्छे बीज के साथ ही साथ फसल को भी खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। यथा अग्नि पुराण में भेड़ और बकरी के मल का चूर्ण, यव का चूर्ण, तिल और गोबर आदि की खाद का भी उल्लेख है। जिससे फल पुष्प आदि जल्द ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

"मत्सयाम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिन:"[20]

राजा पर कृषि के विकास का दायित्व होता था, राजा की ओर से हर संभव मदद कृषकों की की जाती थी। जो राजा कृषकों को भलीभांति कृषि कराकर धान्य संग्रह करवाता था वही अपने राष्ट्र को संतुष्ट एवं सुखी रख पाता था। विष्णु पुराण के अनुसार दुर्भिक्ष से पीड़ित प्रजा दूसरे देशों की ओर उन्मुख हो जाती थी जिन देशों में धन-धान्य भरपूर मात्रा में रहते थे।

"राजानमनुग्रह याचामहे, निसुग्रहा: परत्र गच्छाम:" [21]

इसलिए देश को धन-धान्य से समृद्ध रखना राजा का दायित्व था। दुर्भिक्ष आपदाओं के निवारण हेतु राजा नहर, तालाब, कुएं, जलाशय, तथा बांधों का निर्माण कार्य करवाते थे।

" दुर्भिक्षकर पीड़ाभिरति वोपद्रुता जना:। गोधूमान्नयवान्नाद्यान्देशान्यास्मन्ति दु:खिता।।"[22]

इन कर्तव्यों के अतिरिक्त राजा के अनेक अधिकार भी थे यदि किसान भूमि जोतने अथवा कृषि में असमर्थ है, तो राजा उस भूमि को किसी दूसरे किसान को दे सकता था। राजा के इन समस्त कार्यों और अधिकारों के फल स्वरुप किसान उसे अपनी आय अथवा उपज का निश्चित भाग कर के रूप में प्रदान करते थे। वायु पुराण तथा मत्स्य पुराण में राजा के लिए 'क्षेत्रपाल' शब्द का प्रयोग हुआ है राजा वैन्य के गुणों का वर्णन करते हुए 'क्षेत्रपाल' शब्द से उसे अभिहित किया गया है। इस प्रकार 'क्षेत्रपाल' शब्द राजा के संरक्षक के रूप में मानना चाहिए न कि समस्त भूमि के स्वामित्व के रूप में।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विष्णु पुराण- 5/10/28
2. अग्नि पुराण- 152.5, स्कंदपुराण- 7.1.207153-55
3. विष्णु पुराण- 1.13.83
4. विष्णु पुराण- 1.13.84
5. विष्णु पुराण- 1.13.50
6. विष्णु पुराण- 4.5.28 वायुपुराण- 89.15
7. अग्नि पुराण- 152.4
8. वायु पुराण- 81/150
9. मत्स्य पुराण- 217/33
10. अग्नि पुराण- 257/12
11. विष्णु पुराण- 3.16.8-9
12. मत्स्य पुराण- 227/40
13. विष्णु पुराण- 4.20.14
14. गरुड़ पुराण- 1.205.93, 2.10.26
15. मत्स्य पुराण- 2.7.3
16. गरुड़ पुराण- 2.217.11
17. नारद पुराण- 52.62
18. मत्स्य पुराण- 227.184
19. मार्कंडेय पुराण- 56.81-82
20. अग्नि पुराण- 247.26-31
21. वायु पुराण- 13.171.1
22. विष्णु पुराण- 6.1.38